भगवत् कृपा

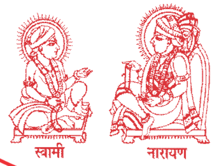

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष–10, अंक–6	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा–10.00
गुरुवार, 25 जून. '87	मानद सहसम्पादक: डॉ.महेन्द्र दवे	प्रति अंक : 1.00

तस्मै श्री गुरवे नमः..........

गुरुपूर्णिमा का परम पवित्र पर्व नजदीक आ रहा है। प्राचीन काल से हरेक सम्प्रदाय में इस पर्व का अत्यधिक महत्व रहा है। 'गुरु' शब्द अपने आप में ही पूर्ण है। प्रश्न उठता है कि अपने जीवन में गुरु की आवश्यकता क्यों? कोई भी व्यक्ति अपने स्वसाधन से प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता। उसके लिए गुरु रूपी नय्या चाहिए ही। व्यावहारिक व आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में गुरु की महिमा अनंत है। नैतिक चरित्र के विकास के लिए, आत्मा की उन्नति के लिए सच्चा आत्मदर्शन करने गुरु की आवश्यकता है। शिष्य के केवल बाहरी आचरण को ही शुद्ध करके गुरु का कार्य पूरा नहीं होता, बल्कि शिष्य की सूक्ष्म जगत की विषय वासनाओं को टालकर उसमें प्रभु की मूर्ति को स्थापित कर देना–वह सच्चे गुरु का अद्वितीय–अनुपम दर्शन है।

जो पूर्ण है वही दूसरों को पूर्ण बना सकता है, जो स्वयं अमृत का सिन्धु है वही दूसरों को अमृत का रसपान करा सकता है,

जो स्वयं पवित्र है वही दूसरों को पवित्रता बक्शिश दे सकता है,

जो स्वयं इन्द्रियां, अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त की सभी भूमिकाओं पर विजय पा चुका है और इन दायरे के बंधनों से मुक्त हो वही दूसरों के बाहरी व आन्तरिक माया के बन्धन काट सकता है,

जिसने स्वयं प्रभु का साक्षात्कार किया है वही शिष्य को भी साक्षात्कार करा सकता है।

इससे भी अधिक आध्यात्मिक चरम सुख में अपने शिष्य को सहभागी बनाने की सच्चे गुरु की चाहना रहती है।

प्राचीन काल से शिष्य गूरुपूर्णिमा पर अपने गुरु का पूजन पुष्प, चंदन, भेंट, वस्त्रादि देकर करता आया है। वह भी एक प्रकार की गुरु के प्रति भक्ति तो है ही, जो हमें करनी ही चाहिए परन्तु सच्चे अर्थ में गुरु पूजन–अपने गुरु की रुचि, अभिप्राय व वचन में खो जाना–यही है। सच्चे गुरु को हमारे धन, कीर्ति, मान इत्यादि की

चाह नहीं होती। वह स्वयं ही तो इन सब ऐश्वर्यों का सम्राट होता है। उसे हम भेंट क्या देंगे? इन्हें तो हमारे चैतन्य की उन्नति में बाधक झूठी अहंता–मान्यताओं, हमारे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, काम, क्रोध, लोभ, वासनाओं से खूब ऊपर उठाकर अपने जैसे ही शाश्वत् सुख, शान्ति, आनन्द शिष्य को मौज में दे देने की इच्छा होती है।

स्वामिनरायाण सम्प्रदाय में ऐसी शुद्ध गुरु परंपार अखंडित चली आ रही है। स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वामिनारायण ने सद्. रामानन्दस्वामी को अपना गुरु बनाकर सम्प्रदाय में गुरु परंपरा की नींव रखी। उसके बाद मू.अ.मू. गुणातीतानन्दस्वामी ने, स्वयं महाराज के रहने का अनादि का अक्षरधाम होते हुए भी, महाराज के प्रति कल्पना से परे का सेवकभाव अदा करके आने वाली पीढ़ियों के लिए गुरुभक्ति का बेमिसाल आदर्श रखा।

मू.अ.मू. गुणातीतानन्दस्वामी के बाद प्रागजी भक्त ने बेजोड़ सेवा करके व अभिप्राय जानकर देहभाव को टोटल ठुकरा कर निराली भक्ति के माध्यम से यह ज्योति और अधिक तीव्र रूप से प्रज्ज्वलित क।प्रागजी भक्त के जीवन के एक छोटे से प्रसंग को भी अगर हम महिमा से निहारेंगे तो हमें प्रेरणा मिल जायेगी कि गुरु के प्रति कैसी निष्ठा, कैसी भक्ति, कैसी निगाह शिष्य को रखनी चाहिए।

एक बार मू.अ.मू. गुणातीतानन्दस्वामी सभा में विराजमान थे। उन्होंने प्रागजी भक्त द्वारा सबको सम्यक् समझदारी का दर्शन कराने हेतु प्रागजी भक्त को आज्ञा करी–''प्रागजी ! जाओ गिरिनार (जूनागढ़ में स्थित एक विशाल पर्वत) को बुला लाओ–बेचारा कितने युगों से तपस्या कर रहा है, तो आज उसका कल्याण करें।'' यह सुनकर प्रागजी भक्त तुरन्त उठे।तो सभा में बैठे अन्य लोग प्रागजी भक्त का उपहास उड़ाते हुए कहने लगे कि: ''प्रागजी में तो अक्ल की कमी है। गुरु तो भले कहे, लेकिन आज्ञा पालने में विवेक तो रखना चाहिए।'' पर जैसा कि 'स्वामी की बातों' में भी लिखा है कि 'पगला ही भगावन भज सकता है–सयाना नहीं और प्रागजी ने तो गुरु को एक अलग दृष्टि से निहारा था। अक्षरधाम में स्थित प्रभु की मूर्ति व प्रगट गुरु की मूर्ति एक ही सिर्फ मानी नहीं–बल्कि सच्चाई से स्वीकारी थी।प्रागजी भक्त तो लोक की परवाह किए बिना अपनी बुद्धि को एक कोने में बिठाकर गिरिनार पर्वत को बुलाने चल दिए।हमारे जीवन में भी ऐसे प्रसंग–भले ही अलग तरह से बनते ही होंगे।लेकिन हमारी कथनी और करनी में खूब अन्तर है, सो ही प्रभु की मूर्ति का वह सुख हम लूट नहीं पाते और ऊपर से दोषी प्रभु को ठहराते हैं। बस प्रागजी भक्त और हममें यही फर्क है ! आज्ञा देने वाला गुरु भी अद्वितीय और आज्ञा को सिर आँखों पर रखकर अपने गुरु का नाम रोशन करने वाला शिष्य भी अद्वितीय। बाद में बात उड़ते-उड़ते प्रागजी भक्त के पास पहुँची तो उन्होने स्पष्ट कह दिया कि ''मैं तो गिरिनार को माथा झुकाकर कहूँगा कि स्वामी तुझे बुला रहे हैं।अगर गिरिनार नहीं आता तो वह विमुख होगा, पर मुझ पर तो मेरे गुरु राजी हो जायेंगे।'' कैसी गुरु के प्रति अचल निष्ठा, कैसी निगाह और आज्ञा करने वाले गुरु को भी अपने सेवक का कैसा अप्रतिम विश्वास होगा?

ऐसा ही दूसरा प्रसंग ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज के समय के सोमाभक्त का है। जो हमें दर्शन कराता है कि गुरु के प्रति शिष्य को किस प्रकार भक्ति अदा करने क्षण-क्षण तत्पर रहना चाहिए।

सारंगपुर में ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज की सेरे छाया में मन्दिर का निर्माण कार्य हो रहा था। एक बार डेढ़ सौ मन का विशाल पत्थर जो कि सात मोटे-मोटे रस्सों में बंधा था....सब भक्त लोग 'स्वामिनारायण-स्वामिनारायण' धून्य करते-करते उसे ऊपर चढ़ा रहे थे। इतने में तो सात रस्सों में से एक रस्सा टूटा, थोड़ा ऊपर खींचा तो दूसरा रस्सा टूट गया, फिर तीसरा....इस प्रकार एक के बाद एक करके छः रस्से टूट गये और केवल एक ही रस्से का आधार बाकी रहा। अभी तक तो सभी निष्ठा पकड़े भजन करते-करते जैसे-तैसे पत्थर चढ़ा रहे थे, परन्तु छः रस्से टूटने पर खींचने वालों की श्रद्धा भी टूटी। पत्थर उस कगार पर था कि न तो नीचे फैंक सकते थे, क्योंकि नीचे गिराने से वह कीमती पत्थर तो टूटता ही; साथ ही नीचे के और कई पत्थरों को भी तोड़ देता। दूसरी ओर एक रस्से के आधार पर पत्थर को ऊपर चढ़ाना भी नामुमकिन जैसा था। सब दौड़े-दौड़े सर्वज्ञ–अन्तर्यामी ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज के पास गए व सारी स्थिति बताई। ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज के मुख पर तो तनिक भी बदलाव नहीं। सदा प्रभु की मस्ती में रहने वाला यह औलिया पुरुष को दृढ़ विश्वास था कि–'सारे ब्रह्मांड में मेरे प्रभु की मरजी ही चलती है।' और वच.ग. प्र.27 के अनुसार जितना भगवान का धारा होता है उतना ही सच्चे संत का धारा होता है। ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज तो उस पत्थर के ठीक नीचे जाकर खड़े रहे और अपने हाथ में ली हुई एक छोटी छड़ी को ऊपर उठाकर पत्थर की ओर निशाना बनाये रखा। फिर, साथ में खड़े शूरवीर सोमाभक्त को आज्ञा करी कि तुम इस पत्थर पर कूद जाओ और ऊपर बैठकर सारे रस्से बांध दो। हम कल्पना करें कि हम सोमाभक्त की जगह पर हो तो? इससे भी अधिक आश्चर्य की बात कि स्वयं सोमाभक्त का वजन भी तो 8 मन–अर्थात् खूब भारी शरीर। डेढ़ सौ मन का पत्थर जो कि एक ही रस्से पर टिका था और उस पर आठ मन वजन का झटका आवे तो पत्थर कैसे झेलेगा? व्यावहारिक दृष्टि से स्वयं छलांग मारकर मरने जैसी ही यह बात थी। परन्तु धन्य हो सोमाभक्त को ! धन्य हो उसकी गुरुभक्ति को ! धन्य हो उसके गुरु के साथ अद्वितीय संबंध को ! बिना बुद्धि लगाये, बिना किंचित् संदेह किए एक दृढ़, अनोखा विश्वास लिए सोमाभक्त उस पत्थर पर कूद गया !! ऐसे निष्ठावान सेवक की रक्षा करने की जिम्मेदारी तो स्वयं प्रभु की ही होती है। गुरु का वचन अध्धर झेलकर स्वयं तो प्रसन्नता पाई ही, साथ ही–अपने गुरु की दिव्य शक्ति का दर्शन भी करा दिया। पत्थर पर कूदकर सारे रस्से बांध दिये और आश्चर्य की बात तो यह कि–जब तक सोमाभक्त ने रस्से बांधे तब तक ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज ठीक उस पत्थर के नीचे लकड़ी ऊंची किए खड़े रहे। धन्य हो शास्त्रीजी महाराज को और लाखों वंदन हो हनुमान जैसे दृढ़ विश्वासु और निष्ठावान सेवक को !!! ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज चाहते तो वह केवल अपने संकल्पमात्र से इस पत्थर को ऊपर पहुँचा सकते थे व लोगों में चमत्कारी पुरुष के नाम से प्रसिद्ध हो सकते थे, परन्तु सेवक की कसौटी करके सेवक को गुरुभक्ति की बेजोड़ मिसाल का आदर्श सीखने से हम वंचित रह जाते।

ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज के पश्चात् गुरुहरि योगीजी महाराज ने भी अपने गुरु के प्रति अनोखा भक्तिपूर्ण जीवन जिया। ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज ने योगीजी महाराज को केवल एक बार ही आज्ञा

करी कि तुम रसोई संभालना। यह कहने के बाद एक बार भी ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज को कभी रसोई के बारे में चिन्ता नहीं करनी पड़ी। लगातार 40 साल तक निरन्तर उमंग से, बिना किसी की अपेक्षा रखे अहोभाव से योगीजी महाराज ने अविरत रसोई की सेवा करके सेवक के गुणों पर अनोखा मुकुट पहना दिया।

गुरुहरि योगीजी महाराज ने खुद तो ऐसा जीवन जिया ही, साथ ही जिन्हें गुरुपरंपरा का वारिसदार चुनें उन्हें भी अपने जैसे ही तैयार करे। इसी गुरुपरंपरा के वारिसदार प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी, प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी, प.पू. महंतस्वामिजी, प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी, प.पू. साहेब ने हमारे सामने ही अपने गुरु के ही पदचिह्नों पर चलकर अद्वितीय जीवन जिया और जी रहे हैं।

प्रभुस्वरूप प.पू. काकाजी के जीवन को हम सभी ने खूब करीब से निहारा है। 1950 में ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज ने गढ़डा में मन्दिर बनाने के लिए 51 हजार रुपये सेवा मांगी। प.पू. काकाजी के पास उस समय सिर्फ 15 हजार रुपये ही थे। अगले ही दिन 60 हजार रुपये की LC खुलवानी थी जो भरने के लिए प.पू. काकाजी 45 हजार कहीं से उधार ले आए थे। एक ओर लाखों रुपये का Contract मिलने वाला था, दूसरी ओर जिसे भगवान का स्वरूप माना था वह शास्त्रीजी महाराज का वचन था। प.पू. काकाजी व पू. कान्तिकाका ने एक दूसरे की ओर देखा, लेकिन दोनों की दृष्टि में ही सेवा व समर्पण की निष्ठा दिखाई पड़ रही थी। अनंतकोटि ब्रह्मांड का अधिपति सामने से आकर सेवा मांगे, तो सब कुछ फना कर देने की भावना से प.पू. काकाजी और पू. कान्तिकाका ने गुरु का वचन अध्धर झेल लिया और बहुत प्रेम से 51 हजार रुपये गुरु के चरणकमल में समर्पित कर दिए। कैसा विरल समर्पण ! कैसी गुरु के प्रति अनूठी भक्ति ! व गुरु शिष्य के संबंध का अपने आप में अनोखा सौन्दर्य लिए गुरु भक्ति का उदाहरण ! ब्र.स्व. शास्त्रीजी महाराज अपार राजी हुए और प.पू. काकाजी व पू. कान्तिकाका को चंदन से आलिंगन करके आशीर्वाद दिए।

ऐसा ही एक अन्य प्रसंग निहारें तो हमें ख्याल आयेगा कि यह गुणातीत पुरुषों कैसा जीवन जी गए और अपने गुरु की प्रसन्नता के पात्र बन गए। हमारी भी इच्छा तो रहती है कि गुणातीतस्वरूपों की प्रसन्नता पा लें, पर हममें हमारी मान्यताओं, बुद्धि के तर्क-वितर्क की प्रधानता रहती है इसलिए ही हम बाजी हार जाते हैं।

प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी,प.पू. कान्ति काका पर business में कुछ गड़बड़ हो जाने के कारण Criminal केस चल रहा था। उस केस के बारे में प.पू. बापा को वकील रखने के बारे में पूछा, तब प.पू. बापा ने एकदम सहजावस्था में कहा ''हाथ हिलाते हुए जाना और हाथ हिलाते हुए वापस आना। और वकील जरूरी रखना ही पड़ता हो तो पचास रुपये वाला रखना।'' इन दो वाक्यों का विचार करें तो या तो यह पागल कह सकता है या फिर प्रभु प्रगटाये हुआ सच्चा भगवत्स्वरूप संत। सेवक का भी कैसा अपने गुरु के वचन में अटूट विश्वास होगा जो विपरीत संजोगों में भी एकमात्र अपने गुरु के वचन का आधार ही सच्चा आधार माना। संबंध की पराकाष्ठा तो होगी ही, साथ ही अपने गुरु के प्रति अलौकिक पराभक्ति का बेनमून आदर्श !!!

हम इसी बाप के बेटे कहे जाते हैं–इसी शुद्ध गुरुपरंपरा के सेवक माने जाते हैं। तो, सच्चा गुरु पूजन–सच्ची गुरुपूर्णिमा वही मनाई कही जाये कि हम पल-पल अंतःदृष्टि करें कि मैं क्या करने आया हूँ और मैं क्या कर रहा हूँ? इससे भी अधिक हमारे सम्प्रदाय में तो गुरु और शिष्य दोनों ने ही ऐसा जीवन जीकर हमें मार्गदर्शन दिया है। वह भी मानव कक्षा की मर्यादा में ही रहकर ! ताकि यदि चाहें तो हम भी ऐसे कर पायें। फिर भी हम संदेह रखें, अपनी सीमित बुद्धि का अभिमान करें, प्रभु का आधार न लेकर अपने बल का आधार लें और सब समझते हुए भी इन्द्रियाँ अन्तःकरण के गन्दे गटर में आनन्द मानें, तो वह हमारी ही कसर मानी जायेगी। उसमें प्रभु का क्या दोष? सोने व पीतल के फर्क की पहचान तो हमें ही रखनी है।

तो, सर्वप्रथम प्रभु की स्मृति, बाद में क्रिया करने हम कदम उठायें। अगर प्रभु को याद करके प.पू. काकाजी के शब्दों में 'हरेक क्रिया शुभ-अशुभ सत्य-असत्य, संकल्प-विकल्प में प्रभु के नाम का नमक डालकर' शुरु करेंगे तो निश्चित् भगवान अपनी रक्षा करेंगे ही।' भगवान श्री कृष्ण ने भी गीता में स्पष्ट कहा है–

'मेरे भक्त का नाश नहीं होगा।'

अन्त, में कैसे भी विपरीत संजोगों में–जब सब प्रलय होता दिखाई पड़े, अपनी नाव डूबती ही दिखाई पड़े तब भी अपने गुरु के वचन में अटूट विश्वास, हमारी निष्ठा में तनिक भी फेर-फार न पड़े व केवल भजन का आसरा लेकर अपने प्रभु को ही कर्ता-हर्ता, नियंता, प्रेरक मानकर जीयें–वह सच्चे अर्थ में शिष्य का लक्षण है। प्रभु जो कर रहे हैं वह मेरे हित में ही होगा, 'दास का दुश्मन हरि कदि न होय' दिल की सच्चाई से यह एक भावना को पकड़ कर निष्ठा से लगे रहेंगे तो गुणातीतस्वरूपों निश्चित् राजी होकर हमें अपनी योजना में भागीदार बना लेंगे। और वास्तव में वह सच्ची गुरु पूर्णिमा भी मनाई कही जायेगी।

⋆ ⋆ ⋆

ब्रह्मप्रवाह

[संतों को संस्था ने जब दूर कर दिया और वे सोखड़ा आकर रहने लगे तब प.पू. काकाजी ने पत्र द्वारा संतों को जो संदेशा भेजा था उसका अंश नीचे लिख रहे है...आज से 20 साल पहले भावी का कैसा इशारा उन्होंने बहुत स्पष्ट रूप से हमें दे दिया था !]

...जो कुछ भी हो रहा है, होने वाला है वह सब ही इतनी हद तक पूर्ण रूप से ख्याल में है (मतलब ध्यान से बाहर कुछ नहीं) व गुरुजी की (बापा की) ही गिनती के मुताबिक होता जा रहा है कि सिर्फ आश्चर्यों की ही परम्परा सुनने को, देखने को, अनुभव करने को मिला करेगी। नया ही चैतन्य स्वरूपों का इतिहास निर्मित हो रहा है। जिसे भविष्य में गुरु स्वर्ण अक्षरों से लिखना चाहते हैं। इसलिए **खूब ही धीरज** रखकर तीव्र प्रार्थना जैसे भाई ने (पप्पाजी ने) लिखी वैसी–करना। तुम्हारी पुकार से ही एक सप्ताह में–सभी के रजकण बदल जायेंगे और पन्द्रह दिन में एक महान चमत्कार होकर–एक परदा पड़ जायेगा और तुम्हारा कार्य Problem हल हो जायेगी।*

इसलिए खूब शांति आनन्द रख कर भजन करते रहना। मानो कुछ बना ही नहीं है। तुम– **ठाकुर और भजन**....मुझे जो करना है वह सब बहुत ही ठीक-ठाक तरीके से होता जा रहा है..पू. बापा पक्का काम करके स्पष्ट दिखायेंगे कि कहाँ सर्वोपरि प्रगटरूप से रहकर वे कार्य करते जा रहे हैं। अतः जब आध्यात्मिक रूप से अपने ही हक में होता जा रहा है, तो क्यों चिन्ता करनी? मैं तो बहुत ही राजा होता हूं और गुरु के रास (खेलने) में जोर से डंडा लगा रहा हूं। आखिर में जीत तो अपनी ही है। इसलिए सभी संतो बल में रहना।

अगस्त, 1966

प.पू. काकाजी महाराज

* [प.पू. काकाजी के यह लिखने के मुताबिक पन्द्रह दिन में पू. प्रमुखस्वामी महाराज द्वारा स्पष्ट संदेश मिला था कि कैसे भी संजोगों में संतों को वे संस्था में वापस लेंगे नहीं।]

☆ ☆ ☆

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	7.7.87	मंगलवार	(देवशयनी) नियम की एकादशी, व्रत, चातुर्मास प्रारंभ
2.	दि.	11.7.87	शनिवार	गुरुपूर्मिमा
3.	दि.	21.7.87	मंगलवार	एकादशी, व्रत
4.	दि.	31.7.87	शुक्रवार	श्री कृष्णजी अदा जयंती
5.	दि.	4.8.87	मंगलवार	नौमी, श्री हरि जयंती
6.	दि.	6.8.87	गुरुवार	एकादशी, व्रत

PUBLISHED By SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,
A 103, Ashokvihar-III, Delhi-110 052. India, Tel. 7128838
Printed at R.P.,Printers, Shahdara, Delhi-110 032